दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

माननीय न्यायमूर्ति श्री पुरुषेंद्र कुमार कौरव

के समक्ष

<u>निष्पा.प्र.अ. 8/2019, सि.वि.अ.13044/2019, 13046/2019, 23958/2022, 32489/2022 एवं 18979/20</u>

<u>EX.F.A. 8/2019, CM APPLs.13044/2019, 13046/2019, 23958/2022, 32489/2022 & 18979/2023</u>

इनके बीचः-

विनीत तिवारी
स्व. श्री विश्वामित्र तिवारी,
वर्तमान निवासी
बी-7/50, सफदरजंग एन्क्लेव,
नई दिल्ली ..... अपीलार्थी

(द्वाराः श्री भाव्या सेठी, श्री अंशुल त्यागी, श्री अमित मलिक, श्री अनुपम शर्मा, श्री आकाश गर्ग, श्री शुभम गर्ग एवं श्री राघबेन्द्र कुमार, अधिवक्तागण।)

तथा

1. हरिंदर पाल सिंह चावला (मृतक)
प्रतिनिधि द्वारा
सुश्री किरण अबनाशी चावला
एन-258, प्रथम तल
ग्रेटर कैलाश पार्ट-1
नई दिल्ली

2. निर्मल चावला डेनियर
पुत्री गोपाल सिंह चावला

निवासी 42, डाना स्ट्रीट, कैम्ब्रिज
मासाच्यूसेट्स, यूएसए

3. **आकाश श्रीवास्तव**
पुत्र श्री अनूप कुमार श्रीवास्तव
निवासी डी-II/137, काका नगर,
नई दिल्ली ..... प्रत्यर्थीगण

(द्वारा: श्री अभिषेक कुमार राव एवं श्री शैलेश सुमन, अधिवक्तागण – प्रत्यर्थी -किरण अबनाशी चावला के साथ। श्री अखिल सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री अविजीत दीक्षित, सुश्री जाह्नवी सिंधु एवं श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, अधिवक्ता, प्रत्यर्थी सं.-3 की ओर से।)

निष्पा.प्र.अ. 9/2019, सि.वि. अ.13074/2019, सि.वि. अ.28958/2019, सि.वि. अ.23960/2022 और 18978/20
EX.F.A. 9/2019, CM APPLs. 13074/2019, CM APPL. 28958/2019, CM APPL. 23960/2022 & CM APPL. 18978/2023

इनके बीचः-

आकाश श्रीवास्तव
पुत्र श्री अनूप कुमार श्रीवास्तव
निवासी डी-2/137, काका नगर, नई दिल्ली-110003
..... अपीलार्थी

(द्वारा: श्री अखिल सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता –के साथ श्री अविजित दीक्षित, सुश्री जाह्नवी सिंधु एवं श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, अधिवक्ता।)

और

1. हरिंदर पाल सिंह चावला (अब मृत)

प्रतिनिधि द्वारा सुश्री किरण अब्नाशी चावला
पुत्री- स्व. श्री अब्नाशी चावला
निवासी- प्रथम तल, एन-258, ग्रेटर कैलाश पार्ट-1
नई दिल्ली-110048

2. विनीत तिवारी
पुत्र स्व. श्री विश्वामित्र तिवारी,
निवासी ई-7/50, ग्रेटर कैलाश पार्ट II,
नई दिल्ली-110048

और
सी-67, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024

3. **निर्मल चावला डेनियर**
पुत्री स्व. श्री गोपाल सिंह चावला
निवासी 42, डाना स्ट्रीट, कैम्ब्रिज
मासाच्यूसेट्स, यूएसए ..... प्रत्यर्थीगण

(द्वारा: श्री अभिषेक कुमार राव एवं श्री शैलेश सुमन, अधिवक्तागण– प्रत्यर्थी- किरण अबनाशी चावला के साथ।)

सुरक्षित: 03.12.2024
उद्घोषित: 12.02.2025

<u>निर्णय</u>

वर्तमान मामला इस न्यायालय को उसी प्रकार की स्थिति में स्थापित करता है, जैसी स्थिति में प्रिवी काउंसिल ने स्वयं को ***राज दरभंगा के***

महाप्रबंधक, कोर्ट ऑफ वार्ड बनाम महाराजा कुमार रामपुत सिंह[1] वर्ष 1872 में निर्णीत, के प्रकरण में पाया था, तथा हाल के समय में उच्चतम न्यायालय ने ***जिनी धनराजगीर बनाम शिबू मैथ्यू और अन्य***[2] के मामले में स्वयं को पाया। इन दोनों निर्णयों में निहित साझा सूत्र यह दूरदर्शी टिप्पणी है कि मुक़दमेबाजों की वास्तविक कठिनाइयाँ डिक्री प्राप्त करने के बाद प्रारंभ होती हैं। ये अपीलें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश-03, दक्षिण पूर्व जिला, साकेत कोर्ट, दिल्ली द्वारा निष्पादन संख्या 77/2017 में दिनांक 07.03.2019 को पारित एक सामान्य विवादित आदेश के विरुद्ध दायर की गई हैं, जिसमें अपीलकर्ताओं/निर्णय देनदारों द्वारा प्रस्तुत आपत्तियों को खारिज कर दिया गया है। ये आपत्तियाँ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 *(इसके बाद "सि.प्र.सं." के रूप में संदर्भित)* के आदेश XXI नियम 97 तथा नियम 103 और 104 के कथित दायरे के अंतर्गत दायर की गई थीं।

<u>पक्षकारगण का विवरण</u>

<u>निष्पा.प्र.अ. 09/2019: (Ex. F. A. 09/2019)</u> आकर्ष श्रीवास्तव बनाम हरिंदर पाल सिंह (अब मृतक, जिनका प्रतिनिधित्व सुश्री किरण अबनाशी चावला द्वारा किया जा रहा है)		
पक्षकारगण का नाम	**निष्पादन न्यायालय के समक्ष**	**इस न्यायालय के समक्ष**

[1] 1872 SCC OnLine PC 16

[2] 2023: SCC OnLine SC: 544

श्री आकर्ष श्रीवास्तव	आक्षेपकर्ता / निर्णीत ऋणी सं. 3	*निष्पा.प्र.अ. 09/2019: (Ex. F. A. 09/2019)* में अपीलार्थी
श्री हरिंदर पाल सिंह चावला (मृतक) द्वारा सुश्री किरण अबनाशी चावला	डिक्री धारक	प्रत्यर्थी सं. 1
श्री विनीत तिवारी	आक्षेपकर्ता / निर्णीत ऋणी सं. 1	प्रत्यर्थी सं. 2
सुश्री निर्मल चावला डेनियर	आक्षेपकर्ता / निर्णीत ऋणी सं. 2	प्रत्यर्थी सं. 3

<u>निष्पा.प्र.अ. 08/2019: (Ex. F. A. 08/2019)</u> विनीत तिवारी बनाम हरिंदर पाल सिंह (अब मृतक, जिनका प्रतिनिधित्व सुश्री किरण अबनाशी चावला द्वारा किया जा रहा है)

पक्षकारगण का नाम	**निष्पादन न्यायालय के समक्ष**	**इस न्यायालय के समक्ष**
श्री विनीत तिवारी	आक्षेपकर्ता / निर्णीत ऋणी सं. 3	अपीलार्थी

श्री हरिंदर पाल सिंह चावला (मृतक) द्वारा सुश्री किरण अबनाशी चावला	डिक्री धारक	प्रत्यर्थी सं. 1
सुश्री निर्मल चावला डेनियर	आक्षेपकर्ता / निर्णीत ऋणी सं. 2	प्रत्यर्थी सं. 2
श्री आकर्ष श्रीवास्तव	आक्षेपकर्ता / निर्णीत ऋणी सं. 3	प्रत्यर्थी सं. 3

2. अपीलार्थीगण/आक्षेपकर्ता क्रमशः श्री विनीत तिवारी, निर्णीत ऋणी सं.-1 *(इसके बाद "जेडी-1" के रूप में संदर्भित)* तथा श्री आकर्ष श्रीवास्तव, निर्णीत ऋणी सं.-3 *(इसके बाद "जेडी-3" के रूप में संदर्भित)* थे। विशेष रूप से, *निष्पा.प्र.अ. 9/2019: (Ex. F. A. 9/2019)* में अपीलार्थी/जेडी-3, श्री आकर्ष श्रीवास्तव, जेडी-1 का पश्चातवर्ती अंतरिती/समनुदेशिती है। ये आपत्तियाँ इस न्यायालय द्वारा आप.पु. सं. 65/2007 (CRP No. 65/2007) में 26.04.2012 को पारित निर्णय की डिक्री के निष्पादन के विरुद्ध दायर की गई थीं। विधिक विवाद ग्रेटर कैलाश-I स्थित मकान सं. एन-258 के भूतल के एक भाग से संबंधित है, जिसे 'सामने और पीछे के लॉन सहित दो-कमरों वाला गैराज ब्लॉक' के रूप में वर्णित किया गया है (इसके बाद वाद संपत्ति के रूप में संदर्भित)।

प्रस्तुतियाँ

3. प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक (इसके बाद "डीएच" के रूप में संदर्भित) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार राव ने न्यायालय से आग्रह किया कि वह सर्वप्रथम इन प्रथम अपीलों की पोषणीयता पर उनकी आपत्ति का निर्णय करे। अतः पक्षकारगण द्वारा उक्त मुद्दे पर विस्तृत रूप से बहस की गई है।

4. विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय का ध्यान दिनांक 21.10.2021 के आदेश की ओर आकृष्ट करते हुए कहते हैं कि इन अपीलों की पोषणीयता संबंधी आपत्ति प्रथम उपलब्ध अवसर पर ही उद्भूत की गई थी।

5. उनके अनुसार, अपीलार्थी/जेडी-3 श्री आकर्ष श्रीवास्तव वादकालीन अंतरिती हैं, और अपीलार्थी/जेडी-1 श्री विनीत तिवारी एक निर्णीत ऋणी हैं। अतः दोनों ही 26.04.2012 के निर्णय और डिक्री द्वारा बाध्य हैं। वे आगे यह भी कहते हैं कि सि.प्र.सं. के आदेश XXI के नियम 35 सहपठित धारा 47 के अंतर्गत पारित आदेश को डिक्री के रूप में नहीं माना जा सकता।

6. विद्वान अधिवक्ता कहते हैं कि 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (इसके बाद "टीपीए" के रूप में संदर्भित) की धारा 52 यह सुनिश्चित करती है कि वाद लंबित रहने के दौरान, अंतिम डिक्री की पूर्ण पूर्ति या निपटान तक, 'संपत्ति का किसी भी पक्षकार द्वारा अंतरण या अन्यथा लेन-देन इस प्रकार नहीं किया जा सकता कि इससे वाद में किसी अन्य पक्षकार के किसी डिक्री या आदेश के अंतर्गत अधिकारों पर प्रभाव पड़े, सिवाय न्यायालय

के प्राधिकार के अंतर्गत'। वे यह भी कहते हैं कि किसी भी परिस्थितियों में वादकालीन अंतरिती, वाद संपत्ति पर डिक्रीधारक के अधिकार के विरुद्ध दावा नहीं कर सकता था।

7. उनका कहना है कि आदेश XXI नियम 102, सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 98 से 100 के अंतर्गत स्थापित निर्णय प्रणाली को *वादकालीन अंतरिती* पर लागू नहीं होने देता। उनके अनुसार, सि.प्र.सं. 1908 का आदेश XXI नियम 102 यह निर्धारित करता है कि आदेश XXI नियम 103 का प्रभाव वादकालीन अंतरिती तक नहीं पहुँचता, अर्थात् नियम 103 में वर्णित सुरक्षा और प्रक्रियाएँ उस किसी भी व्यक्ति पर लागू नहीं होती, जिसे वाद लंबित रहने के दौरान संपत्ति का अंतरण प्राप्त हुआ हो। अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए, वे उच्चतम न्यायालय के ***सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट और अन्य***[3] ***उषा सिन्हा बनाम दीना राम और अन्य:***[4] ***तेज पाल सिंह बनाम हरदित सिंह***[5] निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त करते हैं।

8. दूसरी ओर, निष्पा.प्र.अ. 8/2019 (EX.F.A. 8/2019) में अपीलार्थी/जेडी-1 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी. डी. गुप्ता यह कहते हैं कि वर्तमान अपीलार्थी निर्विवाद रूप से एक निर्णीत ऋणी है और इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI नियम 98 के अंतर्गत किसी भी आपत्ति पर निष्पादन न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय, आदेश XXI नियम 103 के प्रावधानों के आलोक में अपील योग्य है। उनका कहना है कि उन्होंने निष्पादन

[3] (1998) 3 SCC 723
[4] (2007) 7 SCC 144
[5] 1980 SCC OnLine Del 144

न्यायालय के समक्ष एक विशिष्ट आपत्ति उठाई थी और उस आपत्ति का कोई प्रतिवाद नहीं किया गया; अतः इस स्तर पर प्रत्यर्थी/डिक्री-धारक प्रथम अपील की पोषणीयता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठा सकता। उनके अनुसार, निष्पादन याचिका स्वयं ही निष्पादन न्यायालय के समक्ष पोषणीय नहीं थी और इसलिए निर्णीत ऋणी निष्पादन कार्यवाही को चुनौती देने के अपने सभी अधिकार सुरक्षित रखता है। वे आगे कहते हैं कि किसी भी स्थिति में, यदि न्यायालय यह पाता है कि अपील पोषणीय नहीं है, तो वह सदैव वर्तमान कार्यवाही को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत एक याचिका में परिवर्तित करने का निर्देश दे सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय ***असगर बनाम मोहन वर्मा***[6] पर निर्भरता व्यक्त की है।

9. निष्पा.प्र. अ. 9/2019 (EX.F.A. 9/2019) में अपीलार्थी/जेडी-3 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अखिल सिब्बल ने इस न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 से 106 की संपूर्ण योजना से अवगत कराया और इस बात पर बल दिया कि वर्तमान अपीलार्थी/जेडी-3 ने विशेष रूप से प्रत्यर्थी/डिक्री-धारक के उक्त निष्पादन कार्यवाही को बनाए रखने के अधिकार को चुनौती दी थी, जिसे कोई प्रतिवाद नहीं मिला। अतः उनके आवेदन पर दिया गया निर्णय अपील के माध्यम से चुनौती योग्य है।

[6] (2020) 16 SCC 230

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि उनके अनुसार, सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 102 के तहत अपील दायर करने में कोई रोक नहीं है, बल्कि नियम 102 को, अधिक से अधिक, मुकदमे के दौरान हस्तांतरिती को निर्णय और डिक्री के निष्पादन पर आपत्ति उठाने से रोकने के रूप में समझा जा सकता है। वे आगे कहते हैं कि वर्तमान मामले में निष्पादन न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी/डिक्रीधारक द्वारा अपीलार्थी/जेडी-3 के वादकालीन अंतरण के आधार पर उसके सुने जाने के अधिकार के अभाव को लेकर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। किसी भी स्थिति में, यह प्रश्न कि उसकी ओर से उठाई गई आपत्ति पोषणीय थी या नहीं, उक्त पहलू पर न्यायनिर्णयन की मांग करता है। अपने कथन के समर्थन में उन्होंने ***एस. राजेश्वरी बनाम एस. एन. कुलसेकरन और अन्य***[7] के निर्णय पर विशेष बल दिया।

11. विद्वान अधिवक्ता आगे यह कहते हैं कि वाद संपत्ति से संबंधित सभी दावों का, मृतक डिक्रीधारक के श्रेणी-I विधिक उत्तराधिकारी के साथ उनके बीच हुए एक समझौते के माध्यम से निपटान किया जा चुका है।

12. वे आगे तर्क देते हैं कि विचाराधीन वाद का सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता, क्योंकि अपीलार्थी/जेडी-3 को वादकालीन अंतरिती नहीं माना जा सकता, चूँकि उस समय कोई वाद लंबित नहीं था और पक्षकारगण के बीच अधिकार पहले ही स्थापित किए जा चुके थे। इसके अतिरिक्त, निष्पादन न्यायालय ने अपीलार्थी/जेडी-3 के सुने जाने के अधिकार

[7] (2006) 4 SCC 412

की कभी जाँच नहीं की; तथापि न्यायालय ने मामले की सुनवाई की और गुणागुण के आधार पर उसका निर्णय दिया।

<u>विश्लेषण</u>

13. मैंने पक्षकारगण के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनी हैं तथा अभिलेख का परिशीलन किया है।

14. मूल वादी, अर्थात् मृतक हरिंदर पाल सिंह चावला ने विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (इसके बाद 'एसआए' के रूप में संदर्भित) की धारा 6 के अंतर्गत 27.06.1994 को एक सिविल वाद दायर किया था, जिसमें अन्य बातों के साथ यह कहा गया था कि मकान सं. एन-258, ग्रेटर कैलाश-I, नई दिल्ली उनकी बहन श्रीमती राज चावला साहनी के स्वामित्व में था, और 05.06.1984 को उनके निधन के पश्चात वाद संपत्ति का भूतल प्रत्यर्थी सं.2, अर्थात् श्रीमती निर्मल चावला डेनियर के स्वामित्व में आ गया, जबकि प्रथम तल श्रीमती राज चावला साहनी की विल के अनुसार उनके हिस्से में आया।

15. श्री हरिंदर पाल सिंह चावला ने आगे वादपत्र में यह दावा किया कि वह वर्ष 1988/89 से मकान सं. एन-258 के सम्पूर्ण परिसर के स्वामित्व में थे। भूतल का वह भाग, जो प्रत्यर्थी सं.2 श्रीमती निर्मल चावला डेनियर के स्वामित्व में था, उन्हें वहाँ रहने की अनुमति दी गई थी, क्योंकि वह स्थायी रूप से अमेरिका में निवास कर रही थीं। अतः उन्होंने यह कहा कि वह भूतल के स्वामित्व में थे, जिसमें वाद संपत्ति भी सम्मिलित थी। उन्होंने यह भी कहा कि 29.05.1991 को उनकी बहन द्वारा उन्हें मकान सं. एन-258 के भूतल

स्थित आवासीय इकाई से अवैध रूप से बेदखल किया गया, किंतु वह उन्हें वाद संपत्ति से बेदखल करने के अपने प्रयास में सफल न हो सकीं। परंतु बाद में, 24.12.1993 को, उन्हें वाद संपत्ति से उनकी बहन श्रीमती निर्मल चावला डेनियर तथा वहाँ के प्रतिवादी सं.1 श्री विनीत तिवारी द्वारा अवैध रूप से बेदखल कर दिया गया।

16. श्री विनीत तिवारी वर्तमान कार्यवाही में अपीलार्थीगण में से एक हैं। यह आरोप लगाया गया कि श्री विनीत तिवारी एक बिल्डर थे, जिन्होंने नगर निगम एवं पुलिस के अधिकारियों/कर्मचारियों की मिलीभगत से अवैध एवं अनधिकृत निर्माण कराया, और जिनके साथ प्रत्यर्थी सं.2, श्रीमती निर्मल चावला डेनियर, ने पहले ही मकान सं. एन-258 के भूतल, जो उनके स्वामित्व में था, को बेचने के लिए सौदा कर लिया था।

17. इस वाद का प्रतिवाद श्रीमती निर्मल चावला डेनियर तथा श्री विनीत तिवारी द्वारा किया गया और उन्होंने श्री हरिंदर पाल सिंह चावला के ब्यान का खंडन करते हुए अपने-अपने पृथक लिखित बयान दायर किए।

18. विचारण न्यायालय ने मुद्दे विरचित करने के पश्चात पक्षकारगण के साक्ष्य अभिलिखित किए। विचारण न्यायालय ने यह पाया कि वहाँ के वादी, श्री हरिंदर पाल सिंह चावला, 24.12.1993 को वाद संपत्ति के स्वामित्व में थे और उसी दिन प्रतिवादीगण द्वारा उन्हें अवैध रूप से बेदखल कर दिया गया था।

19. यह वाद विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अंतर्गत पोषणीय पाया गया, क्योंकि इसे 26.06.1994 को दायर किया गया था तथा यह परिसीमा अवधि के भीतर था।

20. हालाँकि, वाद इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि यद्यपि यह पाया गया था कि श्री हरिंदर पाल सिंह चावला 24.12.1993 को वाद संपत्ति के स्वामित्व में थे, परंतु वह यह स्थापित करने में असफल रहे कि उनका कब्जा स्थिर एवं निरंतर था। इसके अतिरिक्त, यदि ऐसा माना भी जाए, तो उनका कब्जा केवल अपनी बहन, प्रतिवादी सं.2, अर्थात् श्रीमती निर्मल चावला डेनियर के अभिकर्ता के रूप में ही माना जा सकता था। अतः वाद संपत्ति का वास्तविक कब्जा प्रतिवादी सं.2 श्रीमती निर्मल चावला डेनियर के पास ही था और परिणामस्वरूप, उनकी बेदखली को विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अंतर्गत नहीं माना जा सकता था।

21. एक पुनरीक्षण याचिका, अर्थात् सि.पुन.या. 65/2007(C.R.P. 65/2007) में, मूल वादी श्री हरिंदर पाल सिंह चावला ने सिविल वाद के खारिज किए जाने के निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी।

22. इस न्यायालय ने दिनांक 26.04.2012 की अपनी अंतिम डिक्री के माध्यम से यह पाया कि मकान सं. एन-258 में एक पृथक गैरेज-सह-सेवक क्वार्टर ब्लॉक वाला आवासीय यूनिट सम्मिलित था। अतः पूर्व में दायर व्यादेश वाद के वादपत्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था कि उन्हें भूतल के

सम्पूर्ण भाग, जिसमें वाद संपत्ति भी सम्मिलित थी, से बेदखल कर दिया गया था।

23. इस न्यायालय ने यह पाया कि वहाँ के वादी श्री हरिंदर पाल सिंह चावला 29.05.1991 तक स्पष्ट रूप से सम्पूर्ण मकान सं. एन-258 के कब्जे में थे और उन्हें आवासीय इकाई से अवैध रूप से बेदखल किया गया था। अतः यह माना गया कि श्री हरिंदर पाल सिंह चावला 1988/89 से 24.12.1993 तक स्वामित्व में थे और उसी आधार पर वह विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अंतर्गत वाद बनाए रख सकते थे।

24. इस न्यायालय ने अपने अंतिम निर्णय दिनांक 26.04.2012 में निम्नलिखित रूप से कहा है:–

> *"11. मैं इस मत से भी सहमत हूँ कि विद्वान विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वादी यह स्थापित करने में असफल रहा कि वाद संपत्ति पर उसका स्वामित्व स्थिर था, सर्वथा अस्थिर है और संधार्य नहीं हो सकता। वादी ने वर्तमान वाद के अपने वादपत्र में स्पष्ट रूप से यह कहा था कि वह वर्ष 1988-89 से सम्पूर्ण भूतल में निवास कर रहा था। मैंने पहले ही वादपत्र के पैरा संख्या 4(घ) के उत्तर में प्रतिवादी सं.2 की प्रतिक्रिया को उद्धृत किया है, जिसमें वादी ने ऐसा दावा किया था। प्रतिवादी सं.2 के उस उत्तर के परिशीलन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने वादी के सम्पूर्ण मकान सं. एन-458 पर कब्जे के दावे का स्पष्ट रूप से खंडन नहीं किया था। उन्होंने केवल यह कहा था कि इस तथ्य का लाभ उठाते हुए कि वह अमेरिका में स्थायी रूप से रह रही थीं, वादी स्वयं को सम्पूर्ण मकान सं. एन-458 का स्वामी बताने का दावा कर रहा था। इस प्रकार की दलील को वादी के इस दावे का खंडन नहीं माना जा सकता कि वह सम्पूर्ण मकान सं. एन-458 के वास्तविक भौतिक कब्जे में भी था। अतः यह स्पष्ट है कि वादी का यह दावा कि वह 29 मई, 1991 तक सम्पूर्ण मकान सं. एन-458 के स्वामित्व में था, जब उसे आवासीय इकाई से बेदखल किया गया, सिद्ध हो गया। चूँकि विद्वान विचारण न्यायालय स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि 24 दिसंबर, 1993 को वादी वाद संपत्ति के स्वामित्व में था, इसलिए यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वाद संपत्ति के संबंध में वादी वर्ष*

1988-89 से 24 दिसंबर, 1993 तक उसके कब्जे में था और उसी आधार पर वह विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 6 के अंतर्गत वाद बनाए रख सकता था।

12. वादी के वाद को खारिज करने के लिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया तीसरा कारण भी किसी प्रकार से संधार्य नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि वाद संपत्ति के संबंध में वादी का कब्जा उसकी बहन के अभिकर्ता के रूप में था। यह न तो प्रतिवादी सं.2 का अपने लिखित बयान में मामला था और न ही उन्होंने साक्षी के रूप में प्रस्तुत होकर इस आशय का बयान दिया। अतः विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष दिया ही नहीं जा सकता था। इसके अतिरिक्त, आक्षेपित निर्णय में विद्वान विचारण न्यायालय ने एक ऐसा नया मामला गढ़ दिया, जिसे प्रतिवादी सं. 2 ने स्वयं भी प्रस्तुत नहीं किया था, जो कि विधि में अनुमेय नहीं है।

13. अतः मेरा यह मत है कि आक्षेपित निर्णय किसी भी प्रकार से संधार्य नहीं रह सकता। परिणामस्वरूप, यह पुनरीक्षण याचिका स्वीकार की जाती है और विचारण न्यायालय का आक्षेपित निर्णय एवं डिक्री अपास्त की जाती है। अब वाद संपत्ति के संबंध में वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादीगण के विरुद्ध कब्जा दिलाने की डिक्री पारित की जाती है। तथापि, इससे प्रतिवादी सं.1, जो अब स्वयं को वाद संपत्ति का स्वामी होने का दावा करता है, अपने स्वयं के स्वामित्व के आधार पर स्वतंत्र विधिक कार्यवाही में वाद संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने से वंचित नहीं होगा।"

25. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मूल वादी श्री हरिंदर पाल सिंह चावला के पक्ष में एक निर्णय एवं डिक्री पारित हुई है, जिसमें स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि वहाँ के वादी कब्जा प्राप्त करने की डिक्री के हकदार हैं। तथापि, न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि वहाँ के प्रतिवादी सं.1, अर्थात् श्री विनीत तिवारी, अपने स्वामित्व के आधार पर स्वतंत्र विधिक कार्यवाही में अपने दावे को उठाने के लिए अधिकारित होंगे।

26. यह उल्लेख करना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि प्रतिवादी सं.1, श्री विनीत तिवारी, जो कि अपीलार्थीगण में से एक हैं, ने यह दावा किया कि उन्होंने

श्रीमती निर्मल चावला डेनियर से दिनांक 27.12.1993 को निष्पादित एक पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से भूतल का सम्पूर्ण भाग, जिसमें वाद संपत्ति भी सम्मिलित थी, क्रय किया था। उन्होंने यह भी दावा किया कि उसी दिन उन्हें क्रय की गई संपत्ति का कब्जा सौंप दिया गया था। परिणामस्वरूप, यह स्पष्ट है कि श्री हरिंदर पाल सिंह चावला को 24.12.1993 को बेदखल किया गया था, जबकि आक्षेपित विक्रय विलेख 27.12.1993 को निष्पादित किया गया था। इसके अतिरिक्त, वाद 27.06.1994 को दायर किया गया था।

27. श्री विनीत तिवारी ने दिनांक 26.04.2012 के निर्णय को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका सं. 19099/2012 (SLP(C) No. 19099/2012) दायर की। इसके अतिरिक्त, श्रीमती निर्मल चावला डेनियर द्वारा विशेष अनुमति याचिका सं. 20480/2012 (SLP No. 20480/2012) भी दायर की गई। विशेष अनुमति याचिका के लंबित रहने के दौरान, श्री हरिंदर पाल सिंह चावला के विधिक उत्तराधिकारी को पक्षकार बनाए जाने हेतु एक आवेदन दायर किया गया, जिनका कथित रूप से 3 अप्रैल 2014 को अमेरिका में निधन हो गया था। अतः श्री विनीत तिवारी ने यह कहा कि मृतक श्री हरिंदर पाल सिंह चावला के पीछे केवल एक विधिक उत्तराधिकारी, अर्थात् उनकी पत्नी, श्रीमती मार्गरेट ला सुसा चावला, निवासी 38 स्पाई हिल, पॉगकीप्सी, न्यूयॉर्क, जीवित हैं।

28. एक अन्य आवेदन, अर्थात् अंतर.आ. सं. 6/2015 (I.A. 6/2015), लंबित विशेष अनुमति याचिका में सुश्री किरण अबनाशी चावला द्वारा दायर किया

गया, जिसमें उन्होंने यह कहते हुए स्वयं को पक्षकार बनाए जाने का अनुरोध किया कि श्री हरिंदर पाल सिंह चावला की संपत्ति का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार उन्हें प्राप्त हो गया है। यह दावा 3.12.2013 की एक विल एवं अंतिम इच्छा-पत्र पर आधारित था, जिसके माध्यम से उन्होंने अपनी समस्त संपत्तियाँ, हिस्सेदारी, दावे आदि एक ट्रस्ट को अंतरित कर दिए थे। यह भी कहा गया कि स्वर्गीय श्री हरिंदर पाल सिंह चावला ने सुश्री किरण अबनाशी चावला एवं श्री विशाल सिंह को निष्पादक नियुक्त किया था।

29. अभिलेख दर्शाते हैं कि 15.03.2016 को विशेष अनुमति याचिका सं. 19099/2012 (SLP 19099/2012) तथा विशेष अनुमति याचिका सं. 20480/2012 (SLP 20480/2012) सूचीबद्ध हुईं। प्रतिस्थापन की अनुमति प्रदान की गई तथा वाद उपशमन को अपास्त करने का आवेदन स्वीकार किया गया। परिणामस्वरूप, विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी गई। उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 15.03.2016 को पारित आदेश इस प्रकार है:–

"विशेष अनुमति याचिका (सि) सं. 19099/2012 (SLP (C) No.19099/2012
विलंब क्षमा किया जाता है।
प्रतिस्थापन की अनुमति दी जाती है।
वाद उपशमन अपास्त करने का आवेदन स्वीकार किया जाता है।
विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।
सभी लंबित आवेदन भी खारिज माने जाते हैं।
विशेष अनुमति याचिका (सि) सं.20480/2012 (SLP (C) सं.20480/2012)
विशेष अनुमति याचिका वापस लिए जाने के कारण खारिज की जाती है।"

30. विशेष अनुमति याचिका के खारिज होने के पश्चात, खारिज विशेष अनुमति याचिका में अंतरिम आवेदन अंतर.आ. 2-4/2015 (I.A. 2-4/2015)

तथा अंतर.आ. 6-7/2015 (I.A. 6-7/2015) दायर किए गए। उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य पर संज्ञान लिया कि दिनांक 15.03.2016 के आदेश द्वारा उच्चतम न्यायालय ने वाद उपशमन को अपास्त करने के आवेदन तथा संबंधित आवेदक द्वारा प्रतिस्थापन के आवेदन को स्वीकार कर लिया था। चूँकि संबंधित आवेदकों द्वारा मृतक वादी श्री हरिंदर पाल सिंह चावला की ओर से एवं उनकी ओर से डिक्री के निष्पादन के अधिकार को लेकर परस्पर विरोधी रुख अपनाया गया था, इसलिए पूर्ण न्याय करने के उद्देश्य से उच्चतम न्यायालय ने वाद अनुसूची संपत्ति के संबंध में एक न्यायालय रिसीवर नियुक्त किया।

31. उच्चतम न्यायालय ने आगे यह स्पष्ट किया कि अपने दिनांक 15.03.2016 के आदेश के माध्यम से उसने सभी आवेदकों को, संबंधित पक्षकारगण के अधिकारों एवं दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, विधि के अनुसार अपने-अपने दावों को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता प्रदान की थी। इसमें मूल वादी के पक्ष का समर्थन करना तथा उसकी संपत्ति का प्रतिनिधित्व करना भी सम्मिलित है। पक्षकारगण को विधि द्वारा अनुमेय किसी भी उपयुक्त उपाय की मांग करने के लिए स्वतंत्र छोड़ा गया, जिसमें आवश्यक घोषणाएँ एवं परिणामी राहतें प्राप्त करना, तथा वाद सं. 158/2006 (Suit No. 158/2006) (पूर्व में वाद सं. 680/1994 [previously Suit No. 680/1994]) में अनुसूचित संपत्ति के संबंध में पारित डिक्री के निष्पादन का अनुसरण करना

भी शामिल है। स्पष्टता हेतु, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिनांक 06.02.2017 को पारित आदेश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

"यह मामला कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 25.04.2016 में व्यक्त किए गए संदेह को स्पष्ट करने के लिए हमारे समक्ष रखा गया है। 15.03.2016 को विशेष अनुमति याचिका को खारिज करते समय, इस न्यायालय ने संबंधित आवेदक द्वारा दायर वाद उपशमन को अपास्त करने के आवेदन तथा प्रतिस्थापन के आवेदन को स्वीकार किया था। चूँकि संबंधित आवेदक/आवेदकों द्वारा मृत वादी की ओर से एवं उसकी ओर से डिक्री के निष्पादन के अधिकार को लेकर परस्पर विरोधी रुख अपनाया गया है, इसलिए पूर्ण न्याय करने के उद्देश्य से हम यह उचित और न्यायसंगत समझते हैं कि वाद अनुसूची संपत्ति के संबंध में एक न्यायालय रिसीवर नियुक्त किया जाए, जो उक्त संपत्ति का प्रतीकात्मक कब्जा ग्रहण करेगा और जो पक्षकार पहले से कब्जे में हैं, उन्हें बिना किसी प्रकार का अधिकार, स्वत्व या हित सृजित किए, तथा उस न्यायालय द्वारा अंततः पारित किए जाने वाले ऐसे आदेशों के अधीन रहते हुए, कब्जे में बने रहने की अनुमति देगा, जो यह निर्धारित करेंगे कि मृत वादी की ओर से एवं उसकी ओर से वाद अनुसूची संपत्ति के संबंध में कब्जा दिलाने की डिक्री के निष्पादन का अधिकार किसे प्राप्त है। इस संबंध में संबंधित पक्षकारगण को उपलब्ध सभी दलीलें खुली रखी जाती हैं।

अन्य शब्दों में, हमने दिनांक 15.03.2016 के आदेश द्वारा सभी आवेदनों को संबंधित पक्षकारगण के अधिकारों एवं दलीलों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना स्वीकार किया है, ताकि वे अपने-अपने दावों का अनुसरण कर सकें, जिसमें मूल वादी के पक्ष का समर्थन करना तथा उसकी संपत्ति का प्रतिनिधित्व करना भी सम्मिलित है। इस प्रकार, पक्षकार विधि द्वारा अनुमेय किसी भी ऐसे उपाय का सहारा लेने के लिए स्वतंत्र होंगे, जिसके माध्यम से उपयुक्त घोषणाएँ तथा परिणामी राहतें प्राप्त की जा सकें, जिसमें वाद सं. 158/2006 (Suit No. 158/2006) (पूर्व में वाद सं. 680/1994 [Old Suit No. 680/1994]) में वाद अनुसूची संपत्ति के संबंध में पारित डिक्री के निष्पादन का अनुसरण करना भी शामिल है।

हमने सुश्री रोहिणी मूसा, अधिवक्ता, से न्यायालय रिसीवर के रूप में कार्य करने का अनुरोध किया है। उन्होंने सहर्ष इस अनुरोध को स्वीकार किया है। तदनुसार, हम उन्हें इस आदेश की शर्तों के अनुसार न्यायालय रिसीवर नियुक्त करते हैं।

न्यायालय रिसीवर इस न्यायालय के समक्ष तीन माह के भीतर एक स्थिति रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती हैं, जिस तिथि पर हम न्यायालय रिसीवर को देय पारिश्रमिक तथा अन्य व्ययों के भुगतान से संबंधित विषय पर विचार करेंगे।

उपरोक्त के दृष्टिगत, विचाराधीन कार्यालय रिपोर्ट के संबंध में कोई अन्य निर्देश आवश्यक नहीं हैं।
मामले को 05.05.2017 को सूचीबद्ध किया जाए, ताकि न्यायालय रिसीवर द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली स्थिति रिपोर्ट पर विचार किया जा सके।"

32. इसके पश्चात्, खारिज विशेष अनुमति याचिका में अवमानना याचिका (सिविल) संख्या 905/2017 (Contempt Petition (C) No. 905/2017) दायर की गई। उच्चतम न्यायालय ने लंबित निष्पादन याचिका, निष्पा.या. सं.77/2017 (E.P. No. 77/2017), का भी संज्ञान लिया और आगे यह स्पष्ट किया कि पक्षकारगण के प्रतिविरोधों का संबोधन निष्पादन न्यायालय के समक्ष किया जाएगा तथा दिनांक 06.02.2017 का पूर्व आदेश सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित माना जाएगा। पक्षकारगण को रिसीवर में परिवर्तन/संशोधन अथवा उसे मुक्त किए जाने के लिए निष्पादन न्यायालय से संपर्क करने की स्वतंत्रता भी प्रदान की गई।

33. पक्षकारगण को यह स्वतंत्रता दी गई कि वे निष्पादन कार्यवाही की पोषणीयता, सुने जाने के अधिकार से संबंधित आदि से सभी उपलब्ध प्रतिविरोधों को संबोधित करें। उच्चतम न्यायालय के दिनांक 19.09.2017 के आदेश के अनुच्छेद सं. 5 से 11 इस प्रकार हैं: -

"5. चूँकि निष्पादन कार्यवाही जिला न्यायालय, साकेत, नई दिल्ली के समक्ष लंबित है, अतः हम पक्षकारगण द्वारा उद्भूत प्रतिविरोधों के गुणागुण पर कोई टिप्पणी करने से बचते हैं। इसलिए, सभी प्रतिविरोध पक्षकारगण के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष उठाए जाने हेतु स्वतंत्र रखे जाते हैं।
6. उपरोक्त दृष्टिकोण को देखते हुए, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के गुणागुण पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

7. तथापि, उपर्युक्त उद्धृत दिनांक 06.02.2017 के आदेश को ध्यान में रखते हुए, उसे सभी प्रयोजनों के लिए निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश माना जाएगा।

8. अतः किसी भी पक्षकार के लिए यह खुला रहेगा कि वह रिसीवर में परिवर्तन, संशोधन अथवा उसे मुक्त किए जाने के लिए निष्पादन न्यायालय का रुख करे; और ऐसी स्थिति में निष्पादन न्यायालय के लिए यह खुला रहेगा कि वह मामले पर विचार कर विधि के अनुसार उपयुक्त आदेश पारित करे।

9. यह भी कहना अनावश्यक है कि निष्पादन न्यायालय में लंबित मुद्दों से इतर, यदि किसी पक्षकार का कोई अन्य स्वतंत्र अधिकार है, जिसे किसी अन्य प्रकार से प्रवर्तित किया जाना है, तो इस न्यायालय द्वारा कही गई कोई भी बात उस पक्षकार के लिए विधि के अनुसार उपयुक्त मंच के समक्ष ऐसे उपाय का सहारा लेने में बाधक नहीं होगी।

10. हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि पक्षकारगण के लिए यह खुला रहेगा कि वे निष्पादन कार्यवाही की पोषणीयता, सुने जाने के अधिकार आदि सहित सभी उपलब्ध प्रतिविरोधों को प्रस्तुत करें; और ऐसी स्थिति में निष्पादन न्यायालय द्वारा उन प्रतिविरोधों पर विधि के अनुसार विचार किया जाएगा। यह उल्लेख करना भी आवश्यक नहीं है कि प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया तर्क कि विधि के प्रश्न का पूर्व में ही निपटान हो चुका है, उस पर भी विचार किया जाएगा।

11. यदि कोई लंबित आवेदन हों, तो उनका भी निपटान किया जाए।

34. यह भी उचित होगा कि अंतर.आ. सं. 5/2015 (I.A. 5/2015) पर ध्यान दिया जाए, जो उपर्युक्त विशेष अनुमति याचिका की उच्चतम न्यायालय में लंबित अवधि के दौरान दायर की गई प्रतीत होती है, जिसमें पक्षकारगण के बीच निम्नलिखित सौहार्दपूर्ण व्यवस्था का, अन्य बातों के साथ, उल्लेख किया गया है: -

"4. यह कि पक्षकारगण के बीच यह सहमति हुई है कि वर्तमान संयुक्त आवेदन की शर्तों के अनुसार विशेष अनुमति याचिका का निपटान किया जाए तथा निम्नलिखित तथ्यों को अभिलिखित किया जाए, अर्थात्–

क. यह कि पक्षकारगण इस बात पर सहमत हैं कि श्री विनीत तिवारी (आवेदक सं. 1/याचिकाकर्ता) संपत्ति सं. एन-258, जी.के.-I, नई दिल्ली में स्थित संपूर्ण

भूतल, जिसमें गैराज तथा पीछे एवं सामने के लॉन शामिल हैं, के वास्तविक क्रेता हैं, जो दिनांक 27.12.1993 के पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से क्रय किया गया है, तथा संपूर्ण भूतल का शांतिपूर्ण एवं खाली कब्ज़ा उन्हें प्रत्यर्थी सं.2/आवेदक सं.3 द्वारा सौंप दिया गया था।

ख. यह कि आवेदक सं. 2, सुश्री मार्गराइट ला सुसा चावला (प्रत्यर्थी सं.1 की एकमात्र विधिक प्रतिनिधि), ने श्री विनीत तिवारी के साथ विवाद का सौहार्दपूर्ण रूप से निपटान कर लिया है और वह मुकदमेबाजी को आगे जारी नहीं रखना चाहती हैं। वह श्री विनीत तिवारी द्वारा खरीदी गई संपत्ति के संबंध में तथा उनके मृतक पति द्वारा किए गए दावे/विवाद के संदर्भ में अपने सभी दावे आदि वापस लेती हैं। वह उच्च न्यायालय द्वारा सि.पुन.या. सं.65/2007 (C.R.P. No. 65 of 2007) शीर्षक: हरिंदर सिंह चावला बनाम विनीत तिवारी एवं अन्य में दिनांक 26.04.2012 को पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश के अनुसार उक्त क्षेत्र का कब्ज़ा प्राप्त करने में रुचि नहीं रखती हैं। अतः वर्तमान वाद को आगे जारी रखने का कोई कारण शेष नहीं रहता।

ग. यह कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा सि.पुन.या. सं.65/2007 (C.R.P. No. 65 of 2007) शीर्षक: हरिंदर सिंह चावला बनाम विनीत तिवारी एवं अन्य में दिनांक 26.04.2012 को पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश को तदनुसार अपास्त किया जाए।

घ. यह कि उपर्युक्त संपत्ति से संबंधित मुकदमेबाजी से उद्भूत किसी भी प्रकार का कोई दावा पक्षकारगण का एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं रहेगा।"

35. इन कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान, दिनांक 10.03.2016 को श्री विनीत तिवारी द्वारा श्री आकर्ष श्रीवास्तव के पक्ष में एक पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया गया प्रतीत होता है। अतः श्री आकर्ष श्रीवास्तव ने अपीलों में से एक अपील दायर की।

36. श्री आकर्ष श्रीवास्तव को दिनांक 18.12.2018 के आदेश के माध्यम से शामिल किया गया और उन्होंने निष्पादन न्यायालय के समक्ष निर्णीत ऋणी-3 के रूप में आपत्तियाँ दायर कीं। उनकी आपत्तियों सहित श्री विनीत तिवारी की

आपत्तियों को दिनांक 07.03.2019 के आदेश के माध्यम से अस्वीकार किया जाना वह आक्षेपित आदेश है, जिसे ये अपीलें चुनौती देना चाहती हैं।

37. इस आदेश के माध्यम से निपटान किया जाने वाला पहला और सबसे प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या आक्षेपित आदेश, जिसमें जेडी-1 और जेडी-3 द्वारा दायर आपत्तियों को खारिज किया गया, वह सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 103 के तहत एक डिक्री माना जाएगा और परिणामस्वरूप, इसके विरुद्ध अपील दायर की जा सकेगी।

38. सि.प्र.सं. का आदेश XXI आदेशों और डिक्री के निष्पादन से संबंधित है। आदेश XXI के नियम 97 से 106 तक 'डिक्री धारक या क्रेता को कब्ज़ा सौंपने का विरोध' शीर्षक के अंतर्गत शामिल हैं।

39. उच्चतम न्यायालय के पास सि.प्र.सं. के आदेश XXI के नियम 97 से 106 की रूपरेखा पर विचार करने का अवसर आया था, जो कि ***सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम राजीव ट्रस्ट और अन्य***[8] के मामले में हुआ, और इसमें यह निर्णय दिया गया कि निष्पादन निर्णय के विरुद्ध तृतीय पक्षकार द्वारा उद्भूत विरोध या अवरोध आदेश XXI के नियम 97 के तहत विचार किया जा सकता है।

40. सि.प्र.सं. के नियम 97 से 106 का उद्देश्य किसी भी व्यक्ति द्वारा दिए गए किसी भी प्रकार के विरोध या अवरोध को निष्पादन डिक्री या आदेश का निष्पादन में निपटान करना है। यह एक सही प्रतिपादना है कि ये नियम

[8] (1998) 3 SCC 723

सामूहिक रूप से एक पूर्ण संहिता के रूप में माने जाते हैं, जहाँ तक कब्ज़े की डिक्री के निष्पादन में विरोध या अवरोध का प्रश्न है। तीसरा पक्षकार, जो डिक्री के खिलाफ विरोध करता है, वह सि.प्र.सं. के नियम 101 के दायरे में आएगा, और सहपठित नियम 98 को नियम 101 के, निष्पादन निर्णय के निष्पादन में तीसरे पक्षकार द्वारा किए गए विरोध या अवरोध से उद्भूत प्रश्नों पर निर्णय आवश्यक है।

41. हालांकि, न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यदि विरोध, निर्णीत ऋणी के वादकालीन अंतरिती द्वारा किया गया है, तो न्यायनिर्णयन का दायरा केवल इस सीमित प्रश्न तक घटा दिया जाएगा कि क्या वह वास्तव में ऐसा अंतरिती है। यदि इस प्रश्न पर सकारात्मक निष्कर्ष मिलता है, तो निष्पादन न्यायालय को यह मान लेना होगा कि उसके पास विरोध करने का कोई अधिकार नहीं है, जैसा कि सि.प्र.सं. के नियम 102 की स्पष्ट भाषा में वर्णित है। ऐसे अंतरिती को अतिरिक्त प्रतिविरोध उद्भूत करने से रोकने का प्रतिबंध, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (टीपीए) की धारा 52 में उल्लिखित उपयोगी सिद्धांतों पर आधारित है।

42. विचाराधीन वाद का सिद्धांत मूलतः लंबित मुकदमेबाजी को संदर्भित करता है और यह लैटिन वाक्यांश *Ut pendent nihil innovetur* से लिया गया है, जिसका अर्थ है कि वाद या मुकदमेबाजी के लंबित रहने के दौरान "कुछ नया प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए और कुछ भी बदलना नहीं चाहिए।" इस प्रकार, इस सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य यह है कि वाद की लंबित अवधि

के दौरान संबंधित संपत्ति पर किसी भी नए अधिकार या हित को मान्यता न दी जाए। सरल शब्दों में कहें तो, विचाराधीन वाद का सिद्धांत विवादित संपत्ति के किसी भी अंतरण पर विधिक रोक लगाता है जब तक कि वाद का निपटान नहीं हो जाता, और यह संपत्ति वाद के परिणाम के अधीन होती है।

43. जैसा कि ***केदारनाथ लाल बनाम गणेश राम और अन्य*** [9] के मामले में अवलोकित किया गया है, यह सिद्धांत मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान किसी भी संपत्ति के अंतरण या अन्य किसी प्रकार के व्यवहार पर निषेध लगाता है, बशर्ते कि संबंधित धारा में निर्धारित शर्तें पूरी हों। इसके अतिरिक्त, ***थॉमस (प्रेस) लिमिटेड बनाम नानक बिल्डर्स***[10] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वादकालीन अंतरण न तो अवैध है और न ही प्रारंभ से शून्य, बल्कि वह उस अधिकार के अधीन रहता है जिसे अंततः लंबित मुकदमे में न्यायालय द्वारा निर्धारित किया जाता है। तथापि, किसी वाद में न्यायालय का निर्णय केवल वादकारी पक्षकारगण पर ही बाध्यकारी नहीं होता, बल्कि उन व्यक्तियों पर भी लागू होता है जिन्होंने वादकालीन हक प्राप्त किया हो।

44. ***सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड*** के मामले में, निष्पादन न्यायालय के समक्ष सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 101 तथा धारा 151 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें यह प्रतिविरोध उद्भूत किया गया कि डिक्री उसे पक्षकार बनाए बिना पारित की गई है तथा यह आरोप लगाया गया

[9] (1969) 2 SCC 787
[10] (2013) 5 SCC 397

कि उक्त डिक्री अपीलार्थी और वहाँ के अन्य प्रत्यर्थीगण के बीच मिलीभगत से प्राप्त की गई थी। तथापि, निष्पादन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आवेदक, जो एक तृतीय-पक्षकार प्रतिरोधक है, सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 102 के अंतर्गत उपलब्ध उपाय का लाभ नहीं उठा सकता। उच्च न्यायालय ने भी उक्त दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की। उच्चतम न्यायालय ने उक्त निर्णय के अनुच्छेद 9 में यह प्रतिपादित किया कि उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत होना कठिन है कि निष्पादन डिक्री के विरुद्ध किसी तृतीय पक्षकार द्वारा किया गया प्रतिरोध या अवरोध सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत विचारणीय नहीं हो सकता।

45. ***सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड*** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अनुच्छेद 9 से 10 इस प्रकार हैं: -

> *"9. प्रारंभ में, हम यह अवलोकन कर सकते हैं कि उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत होना कठिन है कि निष्पादन डिक्री के विरुद्ध किसी तृतीय पक्षकार द्वारा किए गए प्रतिरोध या अवरोध पर सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत विचार नहीं किया जा सकता। संहिता के आदेश XXI के नियम 97 से 106 "डिक्री-धारक या क्रेता को कब्ज़ा सौंपने में प्रतिरोध" शीर्षक के अंतर्गत आते हैं। इन नियमों का उद्देश्य किसी भी व्यक्ति द्वारा किए गए प्रत्येक प्रकार के प्रतिरोध या अवरोध का निपटान करना है। नियम 97 विशेष रूप से यह प्रावधान करता है कि जब स्थाई संपति के कब्ज़े से संबंधित डिक्री का धारक, उक्त संपत्ति का कब्ज़ा प्राप्त करने में "किसी भी व्यक्ति" द्वारा प्रतिरोध या अवरोध का सामना करता है, तो ऐसा डिक्री-धारक उस प्रतिरोध या अवरोध की शिकायत करते हुए आवेदन करेगा। उप-नियम (2) न्यायालय पर यह दायित्व डालता है कि वह निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ऐसी शिकायत का निर्णय करे।*
>
> *10. यह सही है कि आदेश XXI के नियम 99 का लाभ किसी व्यक्ति को तब तक उपलब्ध नहीं होता, जब तक कि उसे डिक्री-धारक द्वारा स्थाई संपति से बेदखल न कर दिया जाए। नियम 101 यह उपबंध करता है कि नियम 97 या*

नियम 99 के अंतर्गत दायर किसी आवेदन में उद्भूत होने वाले सभी प्रश्न, यदि वे आवेदन के निर्णय के लिए प्रासंगिक हों, तो उनका निर्धारण निष्पादन न्यायालय द्वारा किया जाएगा। अतः डिक्री का कोई तृतीय पक्षकार, जो निष्पादन के दौरान प्रतिरोध करता है, नियम 101 के दायरे में आएगा, यदि उसके द्वारा किए गए प्रतिरोध या अवरोध के परिणामस्वरूप निर्णय आवश्यक हो। निस्संदेह, यदि प्रतिरोध निर्णीत ऋणी के वादकालीन अंतरिती द्वारा किया गया है, तो निर्णय का दायरा केवल इस सीमित प्रश्न तक सिमट जाएगा कि क्या वह वास्तव में ऐसा अंतरिती है; और इस बिंदु पर सकारात्मक निष्कर्ष होने पर, नियम 102 की स्पष्ट भाषा के मद्देनज़र, निष्पादन न्यायालय को यह मानना होगा कि उसे प्रतिरोध करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसे अंतरिती को आगे कोई अतिरिक्त आपतियाँ उठाने से वंचित करना, संपति अंतरण अधिनियम की धारा 52 में निहित उपयोगी सिद्धांत पर आधारित है।"

46. ***सिल्वरलाइन फोरम (प्राइवेट) लिमिटेड*** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि– प्रथम, आदेश XXI के नियम 102 की स्पष्ट भाषा के कारण वादकालीन अंतरिती को निष्पादन का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं होता तथा ऐसे अंतरिती को आगे कोई आपत्तियाँ उठाने से वंचित करना, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 52 में निहित एकमात्र सिद्धांत पर आधारित है; और द्वितीय, कोई तृतीय पक्षकार विधिक रूप से आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत प्रावधानों का अवलंब लेकर डिक्री के निष्पादन के दौरान आपत्तियाँ उठा सकता है। तथापि, यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि निष्पादन न्यायालय इस बात का निर्णय करने के लिए सक्षम है कि प्रतिरोध करने वाला या अवरोध उद्भूत करने वाला व्यक्ति क्या डिक्री से बंधा हुआ व्यक्ति है तथा क्या वह संपत्ति खाली करने से इंकार कर रहा है। ऐसा निर्णय आवश्यक नहीं कि अनिवार्य रूप से साक्ष्यों के विस्तृत संकलन से ही जुड़ा हो। न्यायालय स्वीकार किए गए तथ्यों के आधार

पर, तथा प्रतिरोधकर्ता द्वारा दिए गए बयानों के आधार पर भी निर्णय कर सकता है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि न्यायालय आवश्यक समझे, तो ऐसे निर्धारण के लिए पक्षकारगण को साक्ष्य प्रस्तुत करने का निर्देश भी दे सकता है।

47. ***उषा सिन्हा बनाम दीना राम व अन्य***[11] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह और अधिक स्पष्ट किया कि सि.प्र.सं. के आदेश XXI के नियम 102 की योजना न्याय, समता तथा सद्भावना पर आधारित है। निर्णीत ऋणी से संपत्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति को यह अनुमानित रूप से ज्ञात माना जाता है कि न्यायालय के समक्ष कार्यवाही लंबित है। अतः उसे ऐसी संपत्ति का क्रय करने से पूर्व सावधान रहना चाहिए जो वाद-विवाद का विषय हो। इस निर्णय में संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 52 में निहित विचाराधीन वाद के सिद्धांत को मान्यता दी गई। इसी प्रकार, ***श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट (इंडिया) लिमिटेड बनाम ओमेश मिश्रा मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट***[12] के मामले में, सि.प्र.सं. के आदेश XXI के नियम 97 से 101 के अंतर्गत *श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट (इंडिया) लिमिटेड* द्वारा आपत्ति दायर की गई थी, जिसमें यह दावा किया गया था कि उसने योगेश मिश्रा से हक प्राप्त किया है, जबकि उक्त योगेश मिश्रा के पक्ष में पहले ही डिक्री पारित हो चुकी थी। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वहाँ की कंपनी *श्रीराम हाउसिंग फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट (इंडिया) लिमिटेड* स्वयं को एक

[11] (2008) 7 SCC 144
[12] (2022) 15 SCC 176

वास्तविक क्रेता बताकर दावा कर रही थी और, इसलिए, उसे आपत्ति उठाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह न तो डिक्री-धारक थी और न ही कोई तृतीय पक्षकार। उक्त निर्णय का अनुच्छेद सं.24 इस प्रकार है: -

> *"24. उपर्युक्त प्रावधानों के समेकित पाठ से यह स्पष्ट होता है कि नियम 97 के अंतर्गत, जब "किसी भी व्यक्ति" द्वारा प्रतिरोध या अवरोध किया जाता है, तब केवल "डिक्री-धारक" ही आवेदन करने का अधिकार रखता है। वर्तमान मामले में, जैसा कि स्वयं अपीलार्थी द्वारा स्वीकार किया गया है, वह संपत्ति का एक वास्तविक क्रेता है, न कि "डिक्री-धारक"। अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह भी स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी ट्रस्ट तथा स्वर्गीय एन.डी. मिश्रा के विधिक उत्तराधिकारी ही डिक्री-धारक हैं, न कि अपीलार्थी। अतः यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के पक्ष में पारित डिक्री के निष्पादन के विरुद्ध आपत्तियाँ उठाने के लिए उपर्युक्त रूप से नियम 97 का आश्रय नहीं ले सकता। इसके अतिरिक्त, नियम 99 उस स्थिति से संबंधित है, जिसमें स्थावर संपत्ति के "कब्ज़े" में स्थित व्यक्ति द्वारा, डिक्री-धारक या उसके क्रेता द्वारा किए गए "बेदखली" के विरुद्ध न्यायालय में शिकायत प्रस्तुत की जाती है।"*

48. ***ब्रह्मदेव चौधरी बनाम ऋषिकेश प्रसाद जयस्वाल***[13] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रतिविरोध को अस्वीकार कर दिया कि तृतीय पक्षकार के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष उपाय केवल तभी उपलब्ध होगा जब वह डिक्री के निष्पादन में बेदखली का शिकार हो जाए और यह अभिनिर्धारित किया कि डिक्री-धारक के साथ-साथ अवरोध उद्भूत करने वाले अवरोधक दोनों के लिए एक वैधानिक उपाय उपलब्ध है, ताकि वे इस विषय में अपनी-अपनी बात रख सकें और निष्पादन न्यायालय के समक्ष उचित निर्णय प्राप्त कर सकें। यह निष्कर्ष सि.प्र.सं. के आदेश XXI के नियम 97 से 103 की योजना को ध्यान में रखते हुए निकाला गया, जिन्हें संबंधित पक्षकारगण की शिकायतों

[13] (1997) 3 SCC 694

का निष्पादन कार्यवाही में एक बार में और अंतिम रूप से निपटान करने हेतु एक पूर्ण संहिता माना गया है।

49. इसी प्रकार, ***तंजीम-ए-सूफिया बनाम बीबी हलीमन***[14] के मामले में, आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत एक तृतीय पक्षकार के आग्रह पर दायर आपत्ति पर विचार किया गया। उक्त स्थिति पर उच्चतम न्यायालय ने ***आशान देवी और अन्य बनाम फुलवासी देवी 2003***[15] के मामले में भी विचार किया है। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 21 में यह कहा गया है कि आदेश XXI के नियम 97 और 99 के प्रावधानों की व्यापक और उदार व्याख्या की गई है, ताकि निष्पादन न्यायालय स्वयं निष्पादन कार्यवाही में ही डिक्री-धारक और तृतीय पक्षकार के बीच के पारस्परिक दावों का निर्णय कर सके और पक्षकारगण को अलग-अलग स्वतंत्र वाद दायर करने के लिए बाध्य कर मुकदमेबाजी को लंबा करने से बचा जा सके।

50. हालाँकि, जहाँ तक उन आक्षेपकर्ताओं/अवरोधकों का संबंध है, जो स्वयं निर्णीत ऋणी हैं अथवा जिन्होंने निर्णीत ऋणी से वादकालीन अधिकार प्राप्त किया है, इस स्थिति पर उच्चतम न्यायालय ने ***नूरदुद्दीन बनाम के. एल. आनंद (डॉ.)***[16] के मामले में स्पष्ट रूप से विचार किया है। इसमें यह निर्णय दिया गया है कि निष्पादन न्यायालय केवल उसी व्यक्ति के आपत्ति या प्रतिरोध के दावे का निर्णय करने के लिए बाध्य है, जो निर्णीत ऋणी से स्वतंत्र हो, न कि उस व्यक्ति का जिसने निर्णीत ऋणी से अधिकार प्राप्त किया हो।

---

[14] (2002) 7 SCC 50
[15] (2003) 12 SCC 219
[16] (1995) 1 SCC 242

51. उपर्युक्त विधिक स्थिति को ***पी. जनार्दन राव बनाम कन्नन***[17] के मामले में भी पुनः दोहराया गया है। कर्नाटक उच्च न्यायालय ने भी ***जेसराज घासीमल बैताल बनाम अहमद हुसैन***[18] के मामले में उक्त पहलू पर और अधिक स्पष्टता के साथ विचार करते हुए यह निर्णय दिया कि सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत आवेदन दायर करने का अधिकार केवल– (i) कब्ज़े की डिक्री धारक, तथा (ii) डिक्री के निष्पादन में बेची गई ऐसी किसी संपत्ति के क्रेता, को ही है। उक्त मामले में संपत्ति को आक्षेपकर्ता द्वारा निजी व्यवस्था के माध्यम से खरीदा गया बताया गया था।

52. न्यायालय को हाल ही में ***नरेश कुमार जैन बनाम आर.एल. कपूर और अन्य***[19] के मामले में, जिसका निर्णय दिनांक 28.01.2025 को किया गया, निष्पादन कार्यवाही में सम्मिलित पक्षकारगण के अधिकारों पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। उक्त निर्णय में न्यायालय ने सि.प्र.सं. के आदेश XXI के अंतर्गत निष्पादन कार्यवाही से संबंधित विधिक बारीकियों को स्पष्ट किया। यह ज़ोर दिया गया कि नियम 98 अथवा नियम 100 के अंतर्गत पारित आदेश डिक्री के समतुल्य होते हैं और इस प्रकार उनमें वही प्रवर्तनीयता तथा अपील योग्य होने की पात्रता होती है। तथापि, न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि वादकालीन अंतरिती द्वारा दायर की गई आपत्तियाँ सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 102 के दायरे से स्पष्ट रूप से बाहर रखी गई हैं। परिणामस्वरूप, नियम 103, जो निर्णयों को डिक्री के समकक्ष मानता है, ऐसी आपत्तियों पर

[17] (2004) 11 SCC 511
[18] 1986 SCC OnLine Kar 212
[19] 2025 SCC OnLine Del 448

लागू नहीं होता और सि.प्र.सं. की धाराएँ 96 तथा 100 स्वतः ही अनुप्रयोज्य हो जाती हैं। न्यायालय ने आगे यह भी स्पष्ट किया कि यदि वादकालीन अंतरिती को अपील की अनुमति दी जाए, तो इससे निष्पादन के चरण में अपील के नए आधार उद्भूत होंगे, जिससे निर्णयों की अंतिमता तथा संरचनात्मक पूर्व न्याय के सिद्धांत को क्षति पहुँचेगी। धाराओं 96 या 100 के अंतर्गत किसी निर्णय को लाने के लिए विधायी मंशा का स्पष्ट होना आवश्यक है, जिसके द्वारा अपील का अधिकार प्रदान किया गया हो। किंतु आदेश XXI के नियम 97 से 106 में वादकालीन अंतरिती को ऐसा कोई अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, विचाराधीन वाद का सिद्धांत न्याय, समता और सद्भावना के सिद्धांतों पर आधारित है, जिसका उद्देश्य मुकदमेबाजी के दौरान संपत्ति के अंतरण को रोकना है, ताकि संबंधित पक्षकारगण के अधिकारों तथा न्यायिक प्रक्रिया की पवित्रता की रक्षा की जा सके। यह भी अवलोकित किया गया है कि निर्णयात्मक प्रक्रिया की निश्चितता और पवित्रता को बनाए रखा जाना अनिवार्य है।

53. इसी प्रकार, वादकालीन अंतरिती के संबंध में स्थिति पर भी उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने वर्तमान निर्णय ***एच. अंजनाप्पा और अन्य बनाम ए. प्रभाकर और अन्य***[20] में विस्तार से विचार किया गया है। इस निर्णय में न्यायालय ने न केवल इस स्थापित सिद्धांत को दोहराया कि सि.प्र.सं. की धारा 96 के अंतर्गत अपील केवल वही व्यक्ति कर सकता है जो निर्णय एवं

[20] 2025 SCC OnLine SC 183

डिक्री से वास्तविक रूप से व्यथित तथा असंतुष्ट हो, बल्कि साथ ही वादकालीन अंतरिती की स्थिति का भी परीक्षण किया। विशेष रूप से, न्यायालय ने उन अधिकारों पर विचार किया जो ऐसे अंतरितियों के होते हैं, जब वे उस वाद में पक्षकार बनाए जाने का आग्रह करते हैं, जिसमें वे मूल रूप से पक्षकार नहीं थे। न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि "व्यथित व्यक्ति" की परिभाषा में वे व्यक्ति शामिल नहीं होते जो केवल मानसिक या काल्पनिक क्षति का दावा करते हों। इसके विपरीत, "व्यथित व्यक्ति" वही माना जाएगा, जिसके किसी अधिकार या हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो या जिसे वास्तविक रूप से क्षति पहुँची हो।

54. उक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने वादकालीन अंतरिती को वाद में पक्षकार बनाए जाने के संदर्भ में कुछ मूलभूत सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं, जिन्हें सिद्धांततः इस प्रकार संक्षेपित किया जा सकता है कि सि.प्र.सं. की धाराएँ 96 एवं 100 क्रमशः मूल डिक्री तथा अपील डिक्री के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती हैं। यद्यपि इन धाराओं में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि अपील कौन दायर कर सकता है, तथापि यह स्थापित सिद्धांत है *कि केवल वही व्यक्ति अपील कर सकता है जो निर्णय एवं डिक्री से प्रतिकूल रूप से व्यथित हो। कार्रवाई से असंबद्ध कोई बाहरी व्यक्ति अपील दायर करने के लिए यह प्रदर्शित करने का दायित्व रखता है कि वह "व्यथित व्यक्ति" की श्रेणी में आता है। "व्यथित व्यक्ति" वह होता है जिसके अधिकार निर्णय एवं डिक्री से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अपील की अनुमति*

नहीं दी जानी चाहिए जो केवल परोक्ष या दूरस्थ रूप से प्रभावित हों। इसके विपरीत, अपील की अनुमति उन गैर-पक्षकारों को दी जानी चाहिए जो निर्णय से बाध्य हैं तथा अन्य कार्यवाहियों में उसे चुनौती देने से वंचित हैं।

55. उपरोक्त निर्णयों में विद्यमान समान सूत्र का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर निम्नलिखित मूलभूत सिद्धांत स्थापित किए जा सकते हैं:

i. डिक्रीधारक या डिक्री के निष्पादन में बेची गई किसी संपत्ति का क्रेता, सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत, कब्जा प्राप्त करने में किसी भी आपत्ति या प्रतिरोध के विरुद्ध शिकायत दायर कर निवारण प्राप्त करने का निर्बाध अधिकार रखता है; ***(सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड)***

ii. किसी तृतीय पक्षकार की ओर से की गई आपत्ति या अवरोध का दावा, निष्पादन कार्यवाही में सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत विचारणीय होता है। तथापि, स्पष्ट वर्जन के आलोक में ऐसा तृतीय पक्षकार निर्णीत ऋणी या वादकालीन निर्णीत ऋणी के माध्यम से दावा करने वाला कोई व्यक्ति नहीं हो सकता ***(सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड)*** ;

iii. डिक्रीधारक के माध्यम से दावा करने वाला व्यक्ति सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 से 101 के अंतर्गत आपत्ति उठाने का विधिक रूप से अधिकारी नहीं है ***(सिल्वरलाइन फोरम प्राइवेट लिमिटेड)*** ;

iv. आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत आपत्ति उठाने वाला आवेदक, निर्णीत ऋणी से स्वतंत्र होना चाहिए या ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए जिसने निर्णीत ऋणी से अधिकार प्राप्त किए हों ***(नूरुद्दीन और आशान देवी) ;***

v. वादकालीन अंतरिती, चाहे वह वाद का पक्षकार हो या न हो, मुकदमे के परिणाम से बाध्य होता है और संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 ऐसे लेन-देन पर प्रहार करती है जो उसे वाद संपत्ति पर कोई अधिकार प्रदान करते हों, क्योंकि यह धारा लंबित वादकालीन अंतरणों को वाद के परिणाम के अधीन कर देती है ***(एच. अंजनाप्पा एवं अन्य)।***

56. वर्तमान तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत दायर एक वाद को इस न्यायालय द्वारा श्री हरिंदर पाल सिंह चावला के पक्ष में डिक्री किया गया। जैसा कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत प्रावधान के उद्देश्य से स्पष्ट है, यह प्रावधान अन्य बातों के साथ-साथ केवल उसी कब्जे को वैधता और वैधानिक मान्यता प्रदान करता है जो विधि की समुचित प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त किया गया हो। यह प्रावधान सारभूत विधि का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित करता है, जिसके अंतर्गत पक्षकारगण के विवादित अधिकारों के संबंध में कब्जे की रक्षा तथा निर्णय केवल विधि की समुचित प्रक्रिया द्वारा ही किया जाना चाहिए, न कि किसी अन्य माध्यम से।

57. धारा 6 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया एक संक्षिप्त प्रक्रिया है, क्योंकि विधि का उद्देश्य लोगों को किसी व्यक्ति को बलपूर्वक या कपटपूर्ण तरीकों से

बेदखल करने से हतोत्साहित करना है, ताकि वे स्वयं कानून अपने हाथ में न लें, चाहे उनका स्वामित्व कितना ही अच्छा क्यों न हो। अतः धारा 6 के अंतर्गत दायर वाद में पारित डिक्री, पराजित पक्षकार पर यह भार अंतरित कर देती है कि वह बाद में स्वामित्व के आधार पर कब्जा प्राप्त करने के लिए वाद दायर करते समय अपने स्वामित्व को सिद्ध करे। विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत राहत का दावा करने वाले वादी को अपना स्वामित्व सिद्ध करना आवश्यक नहीं होता और इसलिए धारा 6 के अंतर्गत पारित डिक्री स्वामित्व के प्रश्न पर पूर्व न्याय के रूप में प्रभावी नहीं होती। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत यदि कोई डिक्री पारित की जाती है, तो उसके विरुद्ध कोई अपील नहीं होती, क्योंकि धारा 6 का उद्देश्य व्यथित पक्षकार को तत्काल उपचार प्रदान करना प्रतीत होता है, जिससे वह अवैध बेदखली की कार्रवाई द्वारा उससे अन्यायपूर्वक छीने गए कब्जे को पुनः प्राप्त कर सके।

58. यदि वर्तमान मामले में आक्षेपकर्ताओं के प्रतिविरोधों की जाँच, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 से संबंधित उपर्युक्त विधिक स्थिति की कसौटी पर की जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि उनकी आपत्तियाँ मूलतः वाद संपत्ति पर उनके स्वामित्व के दावे से संबंधित हैं। जब स्वयं वाद एक संक्षिप्त प्रकृति की कार्यवाही है और उसका निर्णय केवल संपत्ति से अवैध रूप से बेदखल किए जाने के उपचार तक सीमित है, तब ऐसी डिक्री के निष्पादन की प्रक्रिया में प्रतिवादीगण के स्वामित्व का निर्धारण किसी भी कल्पना से परे है। जहाँ तक

सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 101 का प्रश्न है, जिस पर यह तर्क देने हेतु भरोसा किया जा रहा है कि स्वामित्व आदि से संबंधित सभी विवाद उक्त प्रावधान के अंतर्गत तय किए जाने चाहिए, यह दलील स्वयं विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 की योजना को देखते हुए स्वीकार्य नहीं है।

59. उपर्युक्त दृष्टिकोण को पक्षकारगण के मध्य हुई विभिन्न कार्यवाहियों, जिनमें दिनांक 26.04.2012 का अंतिम निर्णय भी सम्मिलित है, से और अधिक बल मिलता है। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 13 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वाद संपत्ति के संबंध में कब्जे की डिक्री पारित की जाएगी, तथापि उसमें प्रतिवादी सं.1, जो स्वयं को वाद संपत्ति का स्वामी बता रहा था, को अपने स्वतंत्र स्वामित्व के आधार पर पृथक विधिक कार्यवाही प्रारंभ करने का अधिकार प्रदान किया गया। उच्चतम न्यायालय ने अपने अंतिम आदेश दिनांक 19.07.2017 के अनुच्छेद 9 में भी यह स्पष्ट किया है कि यदि किसी पक्षकार के पास कोई अन्य स्वतंत्र अधिकार है, तो वह विधि के अनुसार उपयुक्त मंच के समक्ष ऐसे उपाय का सहारा लेने का अधिकारी होगा। अन्य सभी मुद्दों को निष्पादन न्यायालय द्वारा विचारार्थ खुला छोड़ा गया है, तथापि उच्चतम न्यायालय के किसी भी आदेश में यह अनिवार्य नहीं किया गया है कि निष्पादन कार्यवाही के दौरान पक्षकारगण के स्वामित्व से संबंधित अधिकारों का अनिवार्य रूप से निर्णय किया जाए। अंतर.आ. 05/2015 (I.A.05/2015) के माध्यम से अभिलेख पर लाए गए कथित समझौते पर भी उच्चतम न्यायालय द्वारा कोई विचार नहीं किया गया है; बल्कि पक्षकारगण

को विधि के अनुसार उपाय अपनाने का निर्देश दिया गया है। इसके अतिरिक्त, नियम 101 पर जो व्याख्या लागू करने का प्रयास किया जा रहा है, उसे स्वयं उस प्रावधान के पाठ से पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं होता, क्योंकि यह प्रावधान यह अनिवार्य करता है कि अधिकार, स्वामित्व अथवा हित से संबंधित सभी प्रश्न, जो "नियम 97 या नियम 99 के अंतर्गत आवेदन की कार्यवाही में पक्षकारगण के बीच उद्भूत हों" तथा "आवेदन के निर्णय के लिए प्रासंगिक हों", उनका निर्णय निष्पादन न्यायालय द्वारा किया जाएगा। निर्णीत ऋणी या निर्णीत ऋणी के माध्यम से वादकालीन अंतरण प्राप्त करने वाला व्यक्ति, नियम 102 के कारण न तो नियम 97 में और न ही नियम 99 में आता है। अतः उनकी ओर से स्वामित्व संबंधी किसी भी दावे को, निष्पादन न्यायालय द्वारा नियम 101 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, विशेष रूप से तब, जब डिक्री विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत हो, स्वीकार अथवा विचारणीय नहीं माना जाना चाहिए।

60. उल्लेखनीय रूप से, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 एक तात्कालिक उपाय है, जिसका उद्देश्य अवैध बेदखली से उद्भूत आपात परिस्थितियों का निपटान करना है। विधि में अवैध बेदखली के कृत्य को विशेष महत्व दिया गया है तथा विधायिका ने इससे निपटान के लिए सिविल एवं आपराधिक–दोनों प्रकार के उपचारों की परिकल्पना की है। इन उपचारों का सार त्वरित कार्रवाई में निहित है। वर्तमान मामले में यह अत्यंत खेदजनक है कि दिनांक 26.04.2012 का निर्णय एवं डिक्री अब तक लागू नहीं की जा सकी है।

बिना किसी हिचक के यह कहा जा सकता है कि यह स्थिति स्वयं विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के उद्देश्य को और अधिक निष्प्रभावी कर देती है। यदि किसी भी पक्षकार का स्वामित्व के संबंध में कोई दावा हो, चाहे वह वैध हो या अन्यथा, तो उसका उपाय किसी अन्य मंच पर निहित होगा; परंतु किसी भी स्थिति में, निर्णीत ऋणी अथवा उसके माध्यम से दावा करने वाला कोई व्यक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 की आड़ लेकर निष्पादन कार्यवाही को बाधित नहीं कर सकता। यदि ऐसी व्यवस्था की अनुमति दी जाती है, तो वह न केवल विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के उद्देश्य को, बल्कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 के उद्देश्य को भी पूर्णतः विफल कर देगी।

61. यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि निष्पादन के दौरान कुछ व्यक्तियों को आपत्ति उठाने का सीमित अधिकार प्रदान करने की सीमा तक ही आदेश XXI नियम 97 से 106 के प्रावधान लागू होते हैं; इसके अतिरिक्त, ये प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रकार के हैं। इसके विपरीत, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 पक्षकारगण के सारभूत अधिकारों से संबंधित है। अतः सारभूत प्रावधान को प्रक्रियात्मक प्रावधानों पर वरीयता प्राप्त होनी चाहिए, क्योंकि प्रक्रियात्मक प्रावधान केवल सारभूत अधिकारों के न्यायिक निर्णय की प्रक्रिया के सहायक होते हैं और उनका उद्देश्य उस सारभूत निर्णय को उसके तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाना होता है। निष्पादन से पूर्व किया गया न्यायनिर्णय एक सशक्त विधिक उपाय है, जिसका उद्देश्य धोखाधड़ी, तथ्य-छुपाव तथा न्यायिक

प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना, साथ ही न्याय में त्रुटि को टालना है। विधि का मूल उद्देश्य न्याय का वितरण है। जबकि स्थावर संपत्ति में स्वामित्व या हित का अधिकार एक सारभूत अधिकार है, उससे संबंधित विवादों के समाधान हेतु उपलब्ध प्रक्रिया प्रक्रियात्मक अधिकारों के क्षेत्र में आती है, और इसमें किसी को भी निहित अधिकार प्राप्त नहीं होता। यदि विधि किसी विशिष्ट विधिक उपाय को प्राप्त करने के लिए कोई निर्धारित प्रक्रिया निर्धारित करती है, तो उस उपाय को प्राप्त करने के लिए केवल वही प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए।

62. विधिक व्यवस्था की भूमि की प्रक्रिया के प्रति प्रतिबद्धता, विधि का शासन और एकरूपता बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है; किंतु यदि उसी प्रक्रिया के साथ मनमानी करने की अनुमति दे दी जाए, तो यह विधि के शासन के दमन के समान होगा और जनविश्वास को क्षीण कर देगा। विधि के शासन को बनाए रखने हेतु विधिक व्यवस्था में जनविश्वास का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है, और प्रचलित विधिक ढाँचा ऐसा होना चाहिए कि समय-समय पर उत्पन्न होने वाली विशिष्ट आपात परिस्थितियों से निपटान करने में वह पर्याप्त एवं सतर्क प्रतीत हो। न्यायिक प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की कमजोरी आम व्यक्ति की न्यायबोध की भावना को आघात पहुँचा सकती है तथा विधिक व्यवस्था के प्रति निराशा उत्पन्न कर सकती है। प्रक्रियात्मक नियमों का निर्माण सारभूत न्याय को सुगम बनाने के लिए किया जाता है, जो सुव्यवस्थित मानवीय संबंधों के लिए अनिवार्य है। न्यायिक प्रक्रिया का कभी भी दमन के साधन के रूप में या न्याय को कमजोर करने के लिए उपयोग

नहीं किया जाना चाहिए, और इस संबंध में सतर्कता का दायित्व न्यायालयों पर निहित है। यह भी उल्लेखनीय है कि सामान्यतः सारभूत अधिकार को प्रक्रियात्मक अधिकार पर प्राथमिकता प्राप्त होती है; अर्थात् यदि किसी प्रक्रियात्मक त्रुटि का घटित होना भी हो जाए, तो भी किसी व्यक्ति के मौलिक विधिक अधिकार से उसे वंचित नहीं किया जाना चाहिए, बशर्ते कि उसका सारभूत अधिकार मान्यता प्राप्त हो। सार रूप में, मूल विधिक अधिकार अधिक महत्वपूर्ण होता है ***(नूरुद्दीन बनाम डॉ. के.एल. आनंद[21])***।

63. स्पष्टतः, विधिक पहलुओं तथा वर्तमान तथ्यों के व्यापक निर्धारण के आलोक में यह भिन्न रूप से स्पष्ट होता है कि यहाँ सारभूत अधिकार कब्जे की डिक्री के निष्पादनकर्ता/डिक्रीधारक में निहित है, जैसा कि न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है, जिसे दुर्भाग्यवश आज तक उसके विधिक निष्कर्ष तक नहीं पहुँचाया जा सका है। इसके अतिरिक्त, ***एच. अन्जनप्पा एवं अन्य बनाम ए.प्रभाकर एवं अन्य[22]*** के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई विस्तृत विवेचना तथा डिक्रीधारक में निहित निष्पादन के सारभूत अधिकार को ध्यान में रखते हुए, यह महत्वपूर्ण होगा कि डिक्रीधारक द्वारा अपने नाम से डिक्री के निष्पादन की माँग करने का सारभूत अधिकार किसी भी अन्य व्यक्ति के अधिकार पर, चाहे वह निष्पादन कार्यवाही का पक्षकार हो या नहीं, प्रधानता प्राप्त करेगा।

[21] (1995) 1 SCC 242
[22] 2025 SCC OnLine SC 183

64. यदि यहाँ अपीलार्थीगण को किसी विशिष्ट राहत से संबंधित वाद में निरंतर मुकदमेबाज़ी का इतना उदार अधिकार प्रदान किया जाता है, तो यह संक्षिप्त प्रक्रिया के उस मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा, जिसका अभिप्राय विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 के अंतर्गत त्वरित न्याय प्रदान करना है। विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 की योजना एवं तर्क को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 से 106 के साथ तुलनात्मक रूप से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि इन प्रावधानों का एकमात्र उद्देश्य उन अनधिकृत पक्षकारगण के आग्रह पर की जाने वाली निरंतर एवं अनावश्यक मुकदमेबाज़ी का अंत करना है। यदि दोनों विधानों की उक्त विधिक स्थिति को संयुक्त रूप से पढ़ा जाए, तो वे परस्पर पूरक प्रतीत होती हैं; अतः न्यायालय के सुविचारित मत में इन विधानों की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या आवश्यक है। जहाँ एक ओर विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6, स्वामित्व के प्रश्न से परे रहते हुए, शांतिपूर्ण कब्जे की योग्यता बनाए रखने हेतु कब्जे की बहाली का उपाय प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 से 103 यह सुनिश्चित करते हैं कि न्यायालय की डिक्री का निष्पादन डिक्री में निर्धारित सारभूत अधिकारों के अनुसार ही सख्ती से किया जाए, और इसके लिए अवरोध अथवा प्रतिरोध की गुंजाइश को सीमित एवं सुस्पष्ट किया गया है। यदि विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत कब्जे की डिक्री पारित होने के पश्चात्, निष्पादन कार्यवाही के दायरे को निर्णय अथवा अन्य आवश्यकताओं की किसी शिथिल व्याख्या के माध्यम

से विस्तारित किया जाता है, तो यह वास्तव में न्यायालय की डिक्री को बाधित करने के लिए विशेष रास्ते सृजित करने के समान होगा। दूसरे शब्दों में, इससे निर्णीत ऋणी अथवा उसके माध्यम से दावा करने वाला कोई अन्य व्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप से वह प्राप्त कर सकेगा, जो वह प्रत्यक्ष रूप से डिक्री पारित करने वाले न्यायालय के समक्ष प्राप्त नहीं कर सका था। ***जिनी धनराजगिर*** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि न्यायालयों को इस बात के प्रति सतर्क रहना चाहिए कि न्यायालय की प्रक्रिया एवं प्रक्रियात्मक विधियों का निर्णीत ऋणी द्वारा इस प्रकार दुरुपयोग न किया जाए कि विधि द्वारा समुचित प्रक्रिया का पालन कर अपने पक्ष में डिक्री प्राप्त करने वालों को धोखा देने का माध्यम न्यायालय स्वयं बन जाए।

65. वर्तमान मामले में श्री आकाश श्रीवास्तव स्पष्टतः वादकालीन अंतरिती हैं, जिन्होंने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने वाद संपत्ति को श्री विनीत तिवारी से दिनांक 10.03.1996 की पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से क्रय किया है। सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत की गई आपत्ति संधार्य नहीं होगी, क्योंकि वह उक्त प्रावधान के क्षेत्र और दायरे में नहीं आती है; अतः उसकी कथित आपत्ति पर किया गया कोई भी निर्णय डिक्री नहीं माना जाएगा। उसकी आपत्ति/प्रतिरोध का न्यायनिर्णयन सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 103 के अंतर्गत नहीं आएगा और वह सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 102 के प्रावधानों से आच्छादित है, क्योंकि वह वादकालीन अंतरिती है। इसलिए सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत उसकी आपत्तियाँ प्रथमदृष्टया

ही संधार्य नहीं थीं। परिणामस्वरूप, उसकी आपत्तियों पर किया गया न्यायनिर्णयन, सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 103 के अंतर्गत परिकल्पित डिक्री की श्रेणी में नहीं आएगा। तथापि, वह विधि के अनुसार उपयुक्त वैकल्पिक उपाय अपनाने के लिए स्वतंत्र रहेगा।

66. जहाँ तक श्री विनीत तिवारी की आपत्ति का प्रश्न है, विभिन्न मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार, निर्णीत ऋणी होने के कारण उन्हें डिक्री के निष्पादन में कोई आपत्ति उठाने अथवा किसी प्रकार का प्रतिरोध करने की अनुमति नहीं थी, क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 में निर्णीत ऋणी को ऐसा करने से स्पष्ट रूप से वंचित किया गया है। इसी कारण से, आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत उनकी आपत्ति विधि की दृष्टि से पूर्णतः अस्थिर है और विचारणीय नहीं है। अतः उनकी प्रार्थना भी उसी परिणाम को प्राप्त करने योग्य है। स्वर्गीय श्री हरिंदर पाल सिंह चावला द्वारा निष्पादित वसीयत की लाभार्थी सुश्री किरण अबनाशी चावला को, विशिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत पारित डिक्री के निष्पादन का अधिकार प्राप्त है। उनकी विधिक उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिस्थापन हेतु दायर आवेदन को भी उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। वर्तमान में, डिक्री के निष्पादन का अधिकार केवल तभी सीमित किया जा सकता है, यदि अपीलार्थीगण के आग्रह पर उपयुक्त कार्यवाही में उसका अंतिम निर्धारण किया जाता है। इसके अभाव में, अपीलार्थीगण की ओर से किसी भी प्रकार के प्रतिरोध को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

67. प्रत्यर्थी की इस दलील के संदर्भ में कि यदि न्यायालय यह पाए कि अपील संधार्य नहीं है, तो वह वर्तमान कार्यवाही को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका में परिवर्तित करने का निर्देश दे सकता है, न्यायालय का सुविचारित मत है कि यह दलील अस्वीकार किए जाने योग्य है। न्यायालय यह पहले ही निर्णय दे चुका है कि वर्तमान अपीलार्थीगण के आग्रह पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXI नियम 97 के अंतर्गत दायर आपत्तियाँ स्वयमेव विचारणीय नहीं हैं, और इसलिए इस चरण पर इन अपीलों को अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिकाओं में परिवर्तित करने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इस न्यायालय की पर्यवेक्षणीय शक्ति का उद्देश्य विधायी योजना को निरस्त करना या उसके ऊपर अपनी अधिकारिता का विस्तार करना नहीं है, विशेष रूप से तब, जब विधि स्पष्ट, असंदिग्ध और सुस्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त हो, तथा विधि की भाषा को प्रभावी बनाने का परिणाम पूर्णतः न्यायोचित और उचित हो।

68. पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में की गई विस्तृत चर्चा के दृष्टिगत, श्री आकाश श्रीवास्तव एवं श्री विनीत तिवारी की अपीलें असंधार्य पाई जाती हैं। तदनुसार, लंबित आवेदन(आवेदनों) सहित उन्हें खारिज किया जाता है। जुर्माने के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(पुरुषेंद्र कुमार कौरव)

न्यायाधीश

फरवरी 12,2025/एकेएस/डीपी

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*